Pathankot Shouldn't Dictate Pak Policy

The Economic Times 4-1-16

India must develop a stable policy of its own

The terror attack on the Pathankot air force base has been foiled and all five terrorists involved in the attack killed, before they could damage or capture any of the planes and helicopters stationed there, even if at the cost of the lives of three security personnel. The larger question is what this implies for India's policy towards Pakistan. If, just seven days after Prime Minister Narendra Modi made a surprise peace overture by stopping over at Lahore and greeting his Pak counterpart, Pakistan-based terrorists stage an attack on a key Indian defence installation, should India continue with its efforts to engage the government of Pakistan? It should, absolutely.

India must develop a consistent, coherent policy on how to deal with Pakistan, a fragmented polity with multiple power centres, some of which are implacably hostile towards India and can be counted on to express their hostility by means of terror strikes in India or on Indian targets elsewhere, such as in Afghanistan. India cannot

afford to let its Pakistan policy be dictated by hostile elements, whether Kashmiri separatists or those members of the Pakistani establishment who see terror groups as instruments of additional strategic reach. It would be naïve to believe that talks with the civilian government of Pakistan would result in lasting peace between the two countries. India must be prepared for attacks emanating from Pakistan, all the time, whatever the state of relations with the government of Pakistan.

Pakistan is not a normal state, in which the government is in control of policy and actors translate policy into action. India can only seek to engage with those in the Pakistani establishment who are willing to be engaged, and to promote better people-to-people ties, with the long-term goal of wearing down the anti-India sentiment that guides Pakistan's policy. This is a long haul and depends more on India living up to its commitment when it adopted liberal democracy as its constitutional paradigm than on anything that Pakistan itself does. India must stay the course, exercising vigilance all the while.

शराबबंदी के समर्थन में महिलाएं जरूरी बदलाव संग इसे अपनाएं

मुद्रा मंत्र

सुबीर रॉय

देश भर में शराब की बिक्री के आंकड़ों में जबरदस्त तेजी देखने को मिल रही है। मैं भी इस मामले में काफी प्रयोगशील रहा हूं और मैंने उन तमाम ब्रांड को परखा है जिनका समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका है। ऐसे में अगर मैं यह दलील दूं तो थोड़ा अजीब जरूर होगा कि बिहार में शराबबंदी को एक झटके में खारिज नहीं किया जाना चाहिए।

इस हृदय परिवर्तन के लिए मुख्यरूप से दो बातें जिम्मेदार हैं। पहली बात, नीतीश कुमार ने विधानसभा चुनाव के दौरान यह वादा किया था कि अगर वह सत्ता में वापस आते हैं तो शराब की बिक्री पर प्रतिबंध लगा देंगे। यह बात महिला मतदाताओं के मन को भाई और हाल में संपन्न विधानसभा चुनाव में उनकी जबरदस्त उपस्थिति दर्ज की गई। बिहार विधानसभा चुनाव में महागठबंधन की जीत की कई वजह हैं लेकिन यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी।

असल बात यह है कि क्या वाकई चुनावी वादों को गंभीरता से लिया जाता है? प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी लोकसभा चुनाव के प्रचार अभियान के दौरान विदेशों में जमा काला धन देश में वापस लाने की बात की थी। उन्होंने यह भी कहा था कि ऐसा करने से देश के प्रत्येक नागरिक के खाते में लाखों रुपये आएंगे। लेकिन चुनाव के बाद बहुत आराम से कह दिया गया कि यह तो जुमला था और उसे शब्दशः ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। क्या चुनावी वादे तोड़ने के लिए किए जाते हैं और लोकतंत्र इसी तरह काम करता है? क्या चुनावी वादों को (कम से कम महत्त्वपूर्ण वादों को) सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद नहीं किया जाना चाहिए और सत्ता में आने के बाद उनको पूरा करने का हरसंभव प्रयास नहीं किया जाना चाहिए? अगर वादों को पूरा करने की पूरी कोशिश के बाद भी नाकामी हाथ लगती है तो कम से कम यह तो कहा जा सकता है कि आपके इरादे नेक थे।

दूसरी बात, मेरे हृदय परिवर्तन का सीधा संबंध पेशेवर रुख से है। हाल के महीनों में मैं सूक्ष्म वित्त कंपनियों के काम करने के तरीके का अध्ययन कर रहा था और यही वजह थी मैं अर्द्धशहरी इलाकों में रहने वाले कामकाजी गरीबों से सीधे संपर्क में आया। इस दौरान ऋण लेने वाली महिलाओं से संपर्क और उनसे मिले सबक मेरे लिए अहम रहे।

बेंगलूरू के करीब ऐसे ही एक समूह के साथ संवाद के दौरान मैंने बीस वर्ष से कुछ अधिक आयु की महिलाओं के समूह से पूछा कि नीतीश कुमार के शराबबंदी के वादे के बारे में उनका क्या सोचना है और क्या वे अपने राज्य में ऐसा वादा करने वाले नेता का समर्थन करेंगी? उनके जवाब ने मुझे स्तब्ध कर दिया। बगैर किसी अपवाद के उन सभी ने कहा कि वे ऐसे नेता को वोट देंगी। उस वक्त तक हमारी बातचीत में एक किस्म का ठंडापन था। उनमें से कुछ हिजाब में थीं और उन्होंने अपने चेहरे ढक रखे थे। अधिकांश स्त्रियां सार्वजनिक रूप से पुरुषों से बातचीत करने की अभ्यस्त नहीं थीं। लेकिन यह अपेक्षाकृत संकोची समूह अचानक सक्रिय हो गया और उन सबने खुलकर बातचीत करनी शुरू कर दी। यह एक वास्तविक मुद्दा था और उनसे सीधे संबंधित था।

मुझे अहसास हुआ कि मैं यह तो जानता था कि अधिकांश स्त्रियां शराबनोशी के विरुद्ध हैं, खासतौर पर निचले तबके की स्त्रियां लेकिन मुझे यह नहीं पता था कि वे इतनी शिद्दत से इसके खिलाफ हैं। उन्हें पुरुषों का पीना परिवार के अस्तित्व के लिए संकट लगता था और कुछ ने तो अपने अनुभव भी साझा किए।

कोलकाता के बाहरी इलाके में ऐसी ही एक बैठक में मैंने यही सवाल दोहराया। ये महिलाएं कामगार और घरेलू सहायिका इत्यादि थीं। उनकी प्रतिक्रिया भी पहले जैसी ही थी। इन महिलाओं ने भी अपनी कहानियां मुझसे साझा कीं। अब मैंने तय किया कि दिल्ली के बाहरी इलाके की महिलाओं से भी मैं यही प्रश्न करूंगा। यहां भी मुझे समान प्रतिक्रिया मिली। कुलमिलाकर पूरे देश में यही धारणा प्रबल है।

मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं कि बतौर लेखक मैंने अपना ज्यादातर समय कारोबारियों के साथ चर्चा में बिताया है और इस बात ने मुझे इस हकीकत से दूर रखा। मुझे लगता है बिजनेस मीडिया और उसके पाठकों का बड़ा वर्ग भी ऐसी ही स्थिति में होगा।

लेकिन मसला बरकरार है। क्या प्रतिबंध कामयाब होगा? कहीं यह फायदे के बजाय नुकसान तो नहीं पहुंचाएगा? अब तक का अनुभव तो यही कहता है ऐसा नहीं होगा क्योंकि यदि ऐसा होता तो शराबबंदी केवल कुछ ही राज्यों तक सीमित नहीं रहती। ऐसी भी अनेक घटनाएं हैं जहां प्रतिबंध के चलते अवैध शराब के कारण लोगों की जान गई है।

निस्संदेह इसका दीर्घकालिक हल सक्षम माहौल तैयार करना है। लेकिन क्या हम इतना लंबा इंतजार कर सकते हैं; वह भी तब जबकि इसके सफल होने की संभावना बहुत दूर हो। हां, शराब खरीदने की प्रक्रिया कठिन जरूर बनाई जा सकती है। इसके अलावा शहरी मध्य वर्ग और संपन्न लोगों को लक्ष्य बनाया जाना चाहिए जो अपनी देखभाल में सक्षम हैं। इसका सर्वाधिक खमियाजा तो गरीबों को ही उठाना पड़ता है।

ऐसा लगता है कि बिहार सरकार यह बात समझ रही है। इसीलिए उसने देसी शराब की बिक्री पर रोक लगाने और ब्रांडेड शराब को केवल शहरी क्षेत्र में चुनिंदा सरकारी दुकानों से बेचने की योजना बनाई है। मुझे याद है सन 1970 के दशक के आरंभ में दिल्ली में शराब खरीदना कितना मुश्किल काम हुआ करता था जबकि कोलकाता में यह बिना किसी समस्या के खरीदी जा सकती थी। मुझे यह भी याद है कि कैसे बेंगलूरू में मैंने ऑटो रिक्शा चालकों को अनधिकृत दुकानों से शराब खरीदते देखा। हम सब जानते हैं कि प्रतिबंध सफल नहीं होता लेकिन अगर मतदाता पुरजोर तरीके से इसकी मांग रखते हैं तो एक बार प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए। हमें एक ऐसा मॉडल बनाने की कोशिश करनी चाहिए जो सफल साबित हो सके।

आर. जगन्नाथन

पूंजीवाद के लिए श्रम का मुक्त प्रवाह जरूरी

दैनिक भास्कर, 4-1-16

वर्ष 2008 के बाद से माना जाने लगा है कि दुनिया में पूंजीवाद और बाजार आधारित अर्थव्यवस्था विफलता की ओर बढ़ रही है। अमेरिका, जापान यहां तक तक कि चीन में ब्याज दरें शून्य के करीब रखने और बड़ी मात्रा में मुद्रा छापने के बावजूद इन देशों में आर्थिक गतिविधियां (ग्रोथ) रफ्तार नहीं पकड़ पाई हैं। दो विशेषज्ञों मॉर्गन स्टैनली के रुचिर शर्मा और वैश्विक निवेशक मार्क फेबर के मुताबिक हकीकत में हालात और बदतर हो सकते हैं।

रुचिर शर्मा के मुताबिक अगली मंदी दूर नहीं है, लेकिन ऐसी स्थिति हमें 2016 में देखने को मिलेगी, फिलहाल यह कह पाना मुश्किल है। चीन का कर्ज, वहां की अर्थव्यवस्था की तुलना में दोगुनी रफ्तार से बढ़ रहा है। ऐसे में अगली वैश्विक मंदी पर 'मेड इन चाइना' का लेबल लग सकता है। मार्क फेबर का मानना है कि अमेरिका ने अर्थव्यवस्था में सुधार की उम्मीद में हाल में ब्याज दरें बढ़ाई हैं, लेकिन वह एक और आर्थिक मंदी के मुहाने पर खड़ा है। फेबर ने यह भी कहा है कि 2016 में अमेरिकी शेयर बाजार में गिरावट आ सकती है, इसलिए वे अमेरिकी सरकारी बॉन्ड में निवेश कर रहे हैं।

परिदृश्य यह है कि अमेरिका, जापान, यूरोप और चीन, जो दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाएं हैं, या तो मंदी गिरफ्त में हैं या सुस्त पड़ रही हैं या फिर मंदी की ओर बढ़ रही हैं। अमेरिका में लीमन ब्रदर्स के ढहने के बाद विश्व अर्थव्यवस्था संकट में पड़ गई थी। इसके साढ़े सात साल बाद आज भी हम संकट में हैं।

क्या पूंजीवाद भी साम्यवाद की तरह खत्म होने की ओर बढ़ रहा है?

पूंजीवाद आज संकट में क्यों है, इसके कई कारण हैं : पहला, अमेरिका में घोटालों-धोखाधड़ी पर अंकुश लगाने में नियमों की बार-बार विफलता। वर्ष 2000-01 में डॉट कॉम का बुलबुला फूटने से लेकर अमेरिकी सब-प्राइम संकट तक ऐसा होता रहा। दूसरा, यूरोप में कॉमन करेंसी अपनाए जाने के बावजूद साझा वित्तीय नीति विकसित करने में विफलता ने ग्रीस को बार-बार कर्ज लेने की कगार पर ला दिया। जब तक वह इस अंतहीन सिलसिले पर लगाम लगा पाता तब तक काफी देर हो चुकी थी। तीसरा, यूरोप में व्यापार और लोगों की आवाजाही पर लगाए गए कृत्रिम राष्ट्रीय प्रतिबंध।

जब तक बाजार की ताकतों को बड़े कारोबारी देशों में मुक्त व्यापार की आजादी न दी जाए, तब तक पूंजीवाद कारगर नहीं हो सकता है। राष्ट्रीय विचारधारा और सांस्कृतिक कारणों से देशों ने इसमें बाधाएं खड़ी कीं हैं। सभी देश अपने उद्योगों का संरक्षण चाहते हैं। प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक पाने पर उद्योग बेकार होकर सरकार के लिए बोझ बनते हैं, जिससे विकास की रफ्तार सुस्त होती है।

संस्कृति और विदेशी का डर अब पूंजीवाद को रोकने की मुख्य वजह बन रहे हैं, क्योंकि सभी देश लोगों की मुक्त आवाजाही को लेकर चिंतित हैं। प्राथमिक अर्थशास्त्र हमें बताता है कि उत्पादन के तीन कारक होते हैं - पूंजी, श्रम और जमीन। संगठन और टेक्नोलॉजी इससे अलग चीजें हैं। यहां गौर करने लायक बात है कि इन तीन कारकों में से पूंजी देशों के बीच मुक्त रूप से आ-जा रही है, लेकिन जबकि श्रम नहीं। उदाहरण के लिए हाल में अमेरिका ने भारतीय आईटी पेशेवरों के लिए एच1बी वीजा लेने पर पाबंदी लगाना शुरू की है और उसने ऐसे वीजा पर लगने वाली स्पेशल फीस बढ़ाकर दोगुनी कर दी है। इसके पालन में भारतीय कंपनियों पर हर साल 40 करोड़ डॉलर (करीब 2645 करोड़ रुपए) का बोझ आएगा।

यूरोपियन यूनियन ने अपनी सीमाओं के भीतर लोगों की मुक्त आवाजाही की अनुमति दे रखी है, लेकिन इसके बाहर से आने वालों के लिए उसकी नीति उदार नहीं है। इसी तरह चीन और जापान भी सभी को इमिग्रेशन की अनुमति नहीं देते हैं। सिर्फ खाड़ी के देश ऐसे हैं जो विदेशी कामगारों को से आसानी से आने-जाने की अनुमति देते हैं। लेकिन ऐसा इसलिए है क्योंकि इन देशों ने अब तक कच्चे तेल के उत्पादन में काफी पैसा बनाया है। लेकिन कच्चे तेल की कीमतें फिर घट रही हैं। ऐसे में वे अब विदेशी कामगारों की आमद पर रोक लगाएंगे और संभव है कुछ विदेशी कामगारों को स्वदेश भी भेजें।

पूंजीवाद के अस्तित्व के लिए श्रम और प्रतिभाओं का आवाजाही जरूरी है। जब तक दुनिया के देश लोगों की आवाजाही पर भारी प्रतिबंध लगाकर रखेंगे तब तक पूंजीवाद को संकट का सामना करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए चीन को ही लें। दशकों तक उसने 'एक संतान' नीति को अपनाए रखा और इसके कारण जल्द ही उसे कामगारों की कमी का सामना करना पड़ सकता है। इसका समाधान यही है कि वह विदेशियों के लिए अपने दरवाजे खोले और अपने यहां युवा कामगारों को लाए। लेकिन सांस्कृतिक कारक उसे ऐसा करने से रोकेंगे।

इस तरह पूंजीवाद का अस्तित्व, ब्याज दरें घटाने या बजट संतुलित करने पर कम निर्भर है। यह इस बात पर ज्यादा निर्भर है कि उत्पादन से जुड़े सभी कारकों को एक देश से दूसरे देश में मुक्त रूप से आने-जाने की आजादी हो। बशर्ते इनकी आवाजाही पर उचित नियंत्रण हो। मौजूदा समय में उत्पादन का मुख्य कारक - श्रम को देशों की सीमा में बांध कर रखा गया है। जब श्रम की सप्लाई खुलेगी, तभी पूंजीवाद कारगर होगा।

rjagannathan@dbcorp.in

- लेखक आर्थिक मामलों के **वरिष्ठ पत्रकार**, 'फोर्ब्स इंडिया' के **एडिटर-इन-चीफ** हैं।